वेदों में यज्ञीय अवधारणा

*डॉ. हंसराज शर्मा

प्रस्तावना

भारतीय परम्परा के अनुसार वेद ज्ञान–विज्ञान के अनन्त भण्डार हैं। वैदिक धर्म, दर्शन, साहित्य तथा संस्कृति के स्वरूप का यथातथ्य विश्लेषण तब तक सम्भव नहीं है जब तक 'यज्ञ' को नहीं जान लेते। यह एक व्यापक शब्द है, जो सृष्टि के कण–कण में व्याप्त हैं। ऋग्वेद में यह शब्द पाँच सौ अस्सी बार, यजुर्वेद में दो सौ तैंतालीस बार, सामवेद में तिरसठ बार तथा अथर्ववेद में दो सौ अड़सट बार अर्थात् चारों वेदों में यह एक हजार एक सौ चौरासी बार प्रयोग हुआ है। 'यज्ञ' शब्द देवपूजा, सङ्गतिकरण और दान अर्थवाली। यज् धातु से से नङ प्रत्यय करके निष्पन्न हुआ है जिस कर्म में परमेश्वर का पूजन, विद्वानों का सत्कार, सङ्गतिकरण अर्थात् मेल और हवि आदि का दान किया जाता है, उसे यज्ञ कहते है। आचार्य सायण के मतानुसार उद्दिश्य देवतां द्रव्यत्यागो यागोऽभिधीयते अर्थात् देवता विशेष के लिए अग्नि में हव्य पदार्थों का त्याग करना यज्ञ कहलाता है। निघण्टु (3.17) के अनुसार यज्ञ को अध्वर, मेघ, सवनम्, अग्निहोत्र, देवता, इष्टि, इन्द्र, प्रजापति, धर्मादि नामों से पुकारा जाता है। ऋग्वेद तथा यजुर्वेद में यज्ञ को प्रथम धर्म कहा गया है। यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म के आधार पर ही सम्पूर्ण मानव जीवन यज्ञमय बतलाया गया है। अग्नि में हविद्रव्य की आहुति देना यज्ञ का स्थूल स्वरूप है। यज्ञ का व्युत्पत्तिपरक अर्थ इसके व्यापक रूप को प्रकट करता है। यज्ञ का स्वरूप 'यज्ञ विज्ञान' है इसके आधार पर ही मानव द्वारा आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक यज्ञ की व्याख्या सम्भव है। यज्ञीय पद्धति ही मानव की वास्तविक जीवन पद्धति है। यह पद्धति ब्रह्माण्ड की प्रक्रिया के साथ–साथ पिण्डरूप मानव देह में भी निरन्तर चलती रहती है

जो भौतिक रूप में लोक व्यवहार के लिए भी नितान्त आवश्यक है। इस प्रकार यज्ञ मुख्यतः ब्रह्माण्डीय, पिण्ड तथा भौतिक तीनों स्तरों पर सम्पादित किया जाता है।

ब्रह्माण्ड का अर्थ है ब्रह्म का अण्ड। यह जो चराचर जगत दृष्टिगोचर हो रहा है उसे ब्रह्माण्ड कहते है। वैज्ञानिक जगत् इसको अण्डाकार मानते है इसलिए विश्व की सज्ञा ब्रह्माण्ड है। संस्कृत हिन्दी कोश में ब्रह्माण्ड को एक अण्डाकार भुवनकोप कहा गया है जिसके भीतर से यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है।श यज्ञ एक ब्रह्माण्डीय व्यवस्था है। यही ब्रह्माण्ड का केन्द्र बिन्दु एवम् उद्भवस्थल है। यज्ञ से अखिल ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है तथा सदैव यज्ञ में ही प्रतिष्ठित रहता है। यज्ञ विश्व का भरण–पोषण करता है तथा सृष्टि के अन्त तक स्थिर रहता है क्योंकि सृष्टि का कारण भी यही है। पञ्च भूतात्मक ब्रह्माण्ड के समान पञ्चावयव यज्ञ की व्याख्या की गई है। सायण ने ऐतरेय ब्राह्मण के उद्धरण को स्पष्ट करते हुए यज्ञ के हविष्पक्ति आदि भेदों के आधार पर पञ्चसंख्यात्मक स्वरूप में स्पष्ट किया है प्राण–आप–वाक्–अन्न–अन्नाद, स्वयंभू, परमेष्ठी, सूर्य–चन्द्र एवं पृथिवी भेदेन यज्ञ पाङ्क्त है अर्थात् पञ्चावयव है। शतपथ ब्राह्मण में तृतीय काण्ड के द्वितीय खण्डानुसार सवंत्सर में भी वसन्त, ग्रीष्म वर्षा, शरद् एवं

हेमन्त तथा शिशिर भेद के पाँच ऋतुएँ हैं। हेमन्त और शिशिर को एक मानकर पाँच ही ऋतुएँ संवत्सर में होती हैं। 72–72 दिनों की एक ऋतु अरनियों के परिमाण का ही यज्ञहेतु काटना चाहिए। जूलियस एगलिङ्ग महोदय ने अनुवाद करते हुए यज्ञ को पञ्चावयव कहा है – Fivefold is the sacrifice- स्थूल दृष्टि से देखने पर तो यज्ञ बाह्य कर्मकाण्ड प्रतीत होता है परन्तु यह गुह्य रहस्य का प्रतीक है। यह कर्मकाण्ड मात्र नहीं प्रत्युत ब्रह्माण्ड में कार्यरत प्रकृति की अनन्त शक्तियों में परस्पर समन्वय एवं सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए ऊर्जा प्रदान करता है। सभी तत्त्वों के अधिष्ठात देवता ब्रह्माण्डीय मुख्य तत्त्व है और यज्ञ देवताओं का वह आवास है जो असुरों द्वारा कभी भी नष्ट नहीं किया जा सकता है। यज्ञ सभी भूतों एवं देवताओं की आत्मा है।

आदित्य निरन्तर प्रकृति से सोमरूपी अन्न की आहुति ग्रहण करता रहता है तथा आदित्य समद रहता है। यह प्रक्रिया ब्रह्माण्ड में सतत चलती रहती है इसलिए जगत को 'अग्नीषोमात्मक' यज्ञ कहा गया है। ऐतरेयब्राह्मण के अनुसार जो अग्निस्तोम है वह साक्षात अग्नि ही है देवों ने उस अग्नि की स्तोम से स्तुति की इसलिए इसका नाम 'अग्निस्तोम' हआ। अग्निस्तोम होते हुए उसको परोक्ष रूप से 'अग्निष्टोम' नाम से पकारते हैं क्योंकि देव तो परोक्षप्रिय ही होते हैं। यहाँ स्तोम शब्द से श्स्तोम श्लाघायामश धातु का संकेत है। वर्णसंयोग के कारण यहाँ स्तोम के दन्त्य श्स्तोश को श्ष्टोश हो गया है। ब्राह्मणकार ने इसे परोक्ष प्रयोग कहा है। यह भी संभव है कि नियमित 'टुत्व की प्राप्ति न होने के कारण ही इसे परोक्ष कहा गया है।

पिण्ड स्तरीय यज्ञ

पिण्ड शब्द देह का वाचक है जो सर्वथा ब्रह्माण्ड की अनुकृति है। पिण्ड, ब्रह्माण्ड का ही लघुरूप है। जो ब्रह्माण्ड में है उसका अणु–अणु श्पिण्डश में है इसलिए कहा गया है यत्पिण्डे तद्ब्रह्माण्डे। पञ्चभूतात्मक ब्रह्माण्ड तथा मानव शरीर दोनों मूलतः एक रूप है। इन दोनों में विद्यमान व्याप्त पुरुषरूप आत्मा भी एक ही है। जिस प्रकार पुरुष के मन से चन्द्रमा, चक्षु से सूर्य, मुख से इन्द्र तथा अग्नि, प्राण से वायु, नाभि से अन्तरिक्ष, शिर से धुलोक, पैरों से भूमि, श्रोत्र से दिशाएँ उत्पन्न होकर ब्रह्माण्ड में व्यवस्थित हो गए इसी प्रकार देवताओं ने मानव शरीर में भी विभिन्न अवयवों में प्रवेश किया तथा सूर्य चक्षु बन गया तथा वायु प्राण। शरीर में विद्यमान जठराग्नि नित्य भोज्यपदार्थ की आहुति ग्रहण करती है जिससे शक्ति सम्बर्द्धन होता रहता है तथा शरीर में अधोभाग में कामग्नि रूप में विद्यमान अग्नि सृष्टि का विकास करती है। तैत्तिरीय तथा पञ्चविंश ब्राह्मण में स्पष्टतः यज्ञ को सार्वभौमिकता स्वीकारते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि मानव जीवन स्वयमेव एक यज्ञ है जिसकी सत्यता स्वतरू अनुभव की जा सकती है। मनुष्य यजमान रूप में स्वयं यागपशु है जो आदित्य रूप यूप से नित्य बंधा रहता है। बृहदारण्यकोपनिषद् में मनुष्य के शरीर को यज्ञशाला के रूप में विवेचित करते हुए कहा गया है. मनुष्य की शरीर रूपी यज्ञशाला में चार प्रमुख ऋत्विज है – वाणी यज्ञ का होता. चक्षु अध्वर्यु है, प्राण उद्गाता तथा मन ब्रह्मा नामक ऋत्विज है। वाक ही यज्ञ है जो वाक्संयमन करता है वह यज्ञ में आत्मसात् कर लेता है। ऐसी अवस्था में मनुष्य यदि भूलवश कुछ बोल देता है तो यज्ञ आत्मा से पराङ्मुख हो जाता है वह आत्मा से दूर निकल जाता है और ऐसी अवस्था में प्रायश्चित का विधान है। जब वह स्वाहा यां मनसरू उच्चारण करता है तो मन से यज्ञ का आरम्भ करता है। जब वह कहता है – स्वाहोरोरन्तरिक्षात् तब अन्तरिक्ष से आरम्भ करता है। अब कहता है स्वाहा द्यावपृथिवीभ्याम् तब द्यौ एवं पथिवी से आरम्भ करता है जिनमें सभी शामिल हैं। वाक् को अग्नि कहते हुए कहा गया है – तस्य वा एतस्याग्नेर्वागेवोपनिषत्। इसी अग्नि में जब सोम की आहुति दी जाती है तो यज्ञ होता है। यज्ञ से ही ब्रह्माण्ड की स्थिति रहती है। यज्ञ से ही आत्म–स्थिति रहती है। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ को पुरुष कहा गया है। पुरुष ही यज्ञ को तानता है और जब तन जाता है तो यज्ञ इतना बड़ा हो जाता है जितना पुरुष। यज्ञ की दाहिनी भुजा जुहू है तथा बाई उपभृत है। ध्रुवा धड़ है। धड़ से ही सब अंग उपजते हैं। इसलिए ध्रुवा से ही सब यज्ञ उत्पन्न होते हैं। स्रुव प्राण है। जिस प्रकार चौतन्य प्राण शरीर के समस्त अङ्गों में विचरण करता हुआ शरीर को चेतना प्रदान

करता है उसी प्रकार युवा नामक पात्र समस्त त्रुचों से सम्बन्धित होता हुआ यज्ञ के सफल निष्पादन का कारण बनता है। जुहू द्यौ लोक है। उपभृत अन्तरिक्ष और ध्रुवा पृथिवी। पृथिवी से ही सब लोग उत्पन्न होते है उसी प्रकार ध्रुव से ही यज्ञ उत्पन्न होता है। बौधायन धर्मसूत्रकार के मत में आधान के पश्चात् जब अग्नियाँ यजमान में स्थित होती है, तो गार्हपत्य उसके प्राणरूप में, दक्षिणा उसके अपानरूप में, आहवनीय व्यानरूप में तथा सभ्य व आवसथ्याग्नियाँ क्रमशः उदान तथा समान रूप में रहती है। **शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पुनर्मृत्युं मुच्यते य एवमेवतामग्निहोत्रे मृत्योरतिमुक्ति** वेद अर्थात् यज्ञ करने से ऐहिक विपत्तियों का नाश होता है तथा मानव पुनः जन्म मरण रूपी कष्ट से मुक्त हो जाता है परन्तु कर्मकाण्ड के प्रभाव के कारण यह सूक्ष्मरूप तिरोहित हो गया और स्थूल रूप ही अवशिषः रहा।

अग्नि के साहचर्य से क्रिया करना और सृष्टि के तत्वों का उपयोग में लाना भौतिक विज्ञान है। भौतिक विज्ञान 'यज्ञ' से भलीभाँति जुड़ा हुआ है। प्रकाश, उपमा तथा विद्युत के रूप में त्रिविध अग्नियों का अध्ययन भौतिक विज्ञान करता है। ऋग्वेद में ये तीनों अग्नियाँ पार्थिव–अन्तरिक्ष तथा धुलोकाग्नि पर अवलम्बित है। यज्ञ का सम्बन्ध मुख्य रूप से पार्थिवाग्नि तथा गौणरूप से अन्तरिक्ष तथा धुलोक अग्नि सूर्य से है। विज्ञान में मुख्यतरू ठोस (काष्ठ, बर्फादि), तरल (जल, दुग्धादि), गैस (हवा, वाष्पादि) तीनों पदार्थों से जगत् की संरचना हुई हैं। इन तीनों पदार्थों का यज्ञ से घनिष्ठ सम्बन्ध है। द्रव्यों के बिना यज्ञ सम्पादित नहीं होता इसलिए अग्निहोत्र यज्ञ को 'द्रव्य यज्ञ' भी कहते है। यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली समिधा, यज्ञपात्र, कलश, यज्ञवेदी इत्यादि ठोस पदार्थ है, द्रव्यद्रव्य के रूप में प्रयुक्त, घृत, जल, दुग्धादि तरल पदार्थ है तथा हव्यद्रव्यों की आहुति पश्चात् समुत्पन्न नानाविध सुगन्धित वाष्प ही गैसीय पदार्थ है। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ की वैज्ञानिकता का इस प्रकार वर्णन किया गया है – अग्ने धूमो जायते धूमादभ्रम भ्राद् वृष्टि अर्थात् अग्नि से धूम उत्पन्न होता है धूम से अभ्र (मेघ) और मेघ से वृष्टि होती है। यज्ञाग्नि में डाली गई घृताहुति आदित्य (सूर्य) के पास पहुँचती है। आदित्य से वृष्टि उत्पन्न होती है और वृष्टि से प्रजा उत्पन्न होती है इसलिए यज्ञ को प्रजापति भी कहा गया है। जिस प्रकार नाभि शरीर का आधार है उसी प्रकार यज्ञ समस्त विश्व का आधार है। यह निर्विवाद तथ्य है कि यज्ञ से व्यक्ति का शरीर, मन, बुद्धि, प्राण तथा आत्मा क्रमशः स्वस्थ, शुद्ध, निर्मल, बलवान तथा निष्पाप बनते हैं। अमेरिका के एक मनोवैज्ञानिक श्री बैरी राथनेट ने पूना विश्वविद्यालय में 'अग्निहोत्र का मानसिक तनाव पर प्रभाव' नामक विषय पर शोध किया है। उन्होंने बताया मानसिक रूप से घरेलू चिकित्सा एवं यज्ञीय धूम के प्रभाव से बच्चों का मिर्गी रोग ठीक हो जाता है और मानसिक रूप से अविकसित बच्चों की बुद्धि विकसित हो जाती है। यज्ञ से पृथ्वी तथा अन्य ग्रहों की गति द्वारा उठने वाली प्राकृतिक तरंगों का वातावरण पर विशेष प्रभाव पड़ता है तथा ये तरंगे मानव के शरीर व मस्तिष्क पर विशेष प्रभाव डालती हैं। यज्ञीय धूम का शरीर के सूक्ष्म तन्तुओं पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यज्ञ के धम के सामने रहने से रक्त में निहित 'शुगर प्लेट्स' की साम्यावस्था रहती है। सृष्टि की साम्यावस्था में सभी पदार्थ एकरूप होते है किसी का पृथक् अस्तित्व नहीं रहता, सर्वत्र एकरूपता और एकरसता होती है इस स्थिति को आधुनिक वैज्ञानिक नाभिक (Nucleus) कहते है, यज्ञीय मन्त्रों में उसे हिरण्यगर्भ कहा गया है। ऋग्वेद में 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः' इस रहस्यात्मक मन्त्रांश का आदि दैविक तथा आदि भौतिक दृष्टि से यह अर्थ सम्पादित होता है कि सृष्टि के आरम्भ में सब प्राकृतिक शक्तियों ने परमदेव की पूजा, विभिन्न पदार्थों के संगतिकरण द्वारा उन पदार्थों में उन्हें समर्पित कर सृष्टि निर्माण रूपी यज्ञ में सहयोग किया तथा यही तीन कार्य प्राकृतिक धर्म अथवा धारक तत्त्व माने गये। अथर्ववेद में उल्लेख मिलता है कि परमेश्वर ने महान् व्यापक मूल तत्त्व अर्थात् प्रकृति से तैंतीस लोकों का निर्माण किया और उन लोकों के ज्ञानार्थ उन्होंने यज्ञ की सृष्टि की। इस प्रकार हम कह सकते है कि यज्ञ न केवल सृष्टि का प्रतीक है बल्कि उसकी व्याख्या भी है जिसका सम्बन्ध भौतिक विज्ञान से है। इसके अतिरिक्त मन्त्रों के अनेक शब्द यथा वायु, तपस, चक्र, अग्न्यादि भौतिक विज्ञान में समान अर्थों में पाये जाते हैं। यज्ञ जिन–जिन तत्त्वों अथवा पदार्थों से सम्बन्ध रखता है उन्हीं तत्त्वों तथा पदार्थों का सम्बन्ध किसी न किसी रूप में ब्रह्माण्ड, पिण्डरूपी मानव देह तथा भौतिक विज्ञान से भी है। भौतिक विज्ञान

जिन–जिन सुख सुविधाओं का जनक है उन–उन सुविधाओं को देने में वैदिक यज्ञ सक्षम है। निरूसन्देह यज्ञ तथा विज्ञान का घनिष्ठ सम्बन्ध है यज्ञ की प्रक्रिया विज्ञानाश्रित क्रिया है।

वैदिक काल में यज्ञ के वास्तविक तत्त्व को मानव भलीभाँति समझते थे उनके हदयों में यज्ञ के प्रति श्रद्धा भक्ति का भाव था जिससे समय–समय पर यज्ञ–यागादि कर्मकाण्ड करते रहते थे। समग्र संसार एवं उनका कल्याण होता था अतिवृष्टि, भूकम्प, महामारी, अकाल, रोग, अल्पमृत्यु इत्यादि का सर्वथा अभाव था। वर्तमान समय में स्वार्थवश एवं चकाचौंध में संलिप्त होकर मानव ने यज्ञ के महत्त्व तथा शास्त्र की मर्यादा को भुलाकर मनमाना आचरण प्रारम्भ कर दिया है जिसके परिणामस्वरूप वह विपत्ति

एवं नाना प्रकार की आपदाओं से ग्रस्त जीवन व्यतीत कर रहा है। सर्वत्र अविश्वास आतंकवाद, भय, हिंसा, ईर्ष्या, द्वेषादि का आर्तनाद सुनाई पड़ता है। जिस यज्ञ को अत्यन्त पवित्र मानकर निष्काम भाव से सम्पादित करके मनुष्य अपना एवं विश्व का कल्याण एवं इहलौकिक–पारलौकिक सुख सरलता से प्राप्त कर लेता था। आज उसके अभाव या विधिहीन यज्ञ को अपना कर उसने स्वयं पैरों पर कुल्हाड़ी मारने का कार्य किया है। वैदिक यज्ञ शास्त्रीय विधि से सम्पन्न कर अपना, समाज, राष्ट्र एवं समग्रविश्व का कल्याण किया जाना श्रेयस्कर है। वैज्ञानिक अन्वेषक यदि वेदोक्त यज्ञ की ओर दृष्टि डालें और तत्परता से अनुसंधान करें तो इससे जगदुपकारक अनेक अद्‌भुत तत्त्व प्रकाशित हो सकते हैं।

***व्याख्याता**
ज्योतिष शास्त्र
राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय
नीम का थाना (सीकर) राजस्थान

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. यज देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु, भ्वादि 'यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो' नङ् प्रत्यय। अष्टाध्यायी, पाणिनी, 3.3–90 तै.स. , 3.5.11.5. ऐ.ब्रा., 1.1.7
3. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।

   तेह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः।। ऋ. 1.164.50, 10.90.16 , यजु. 31.16
4. संस्कृत शब्दार्थ–कौस्तुभ, पृ. 835.
5. अयं यज्ञः भुवनस्य नाभिः। ऋ. 1.63.35 ———यज्ञः बभूव भुवनस्य नाभिः। तै.ब्रा., 2.4.7.5
6. यज्ञ एव अन्ततरू प्रतितिष्ठतिः। तै.ब्रा., 1.8.12

   ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्। गीता, 3.15
7. पाङ्को वै यज्ञः। श.ब्रा., 3.6.4.17; ऐ.ब्रा., 2.3.6
8. यो वै यज्ञे हविपक्ति वेद। ऐ.ब्रा. 2.3.6

9. Eggeling] The Satapatha&Brahmana] Part&II] च. 166.
10. एतत् खलु वै देवानामपराजितमायतनम। यद्यज्ञरू। तै.बा., 3.3.7.7
11. सर्वेषां वा एप भूताना सर्वेषा देवानामात्मा यद्यज्ञः। श.ब्रा. 14.3.2.1
12. वेद और उसकी वैज्ञानिकता, आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति।
13. ऐ.ब्रा., 1.1.7, तै.स., 3.5.11.5
14. अग्नी प्रास्ताहुति रू सम्यक् आदित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिस्ततोऽन्नं तत् प्रजारू।। मनु. . 3.76
15. यज्ञ और विज्ञान, डॉ. जगदीश प्रसाद, वैदिक प्रकाशन, मेरठ।